ओ३म्

वेदों की दुर्दशा का दोषी कौन?

भूमिका

वेद ईश्वर की सनातन वाणी है, ऐसा हम सभी वैदिकधर्मी सदा से मानते चले आये हैं। वेद का ज्ञान सृष्टि के आदि में चार ऋषियों को प्राप्त होता है, ऐसा हम सभी मानते हैं। परमात्मा वेद का ज्ञान इसलिए देता है, जिससे हम मनुष्यों को उसकी बनायी हुई सम्पूर्ण सृष्टि का यथार्थ विज्ञान प्राप्त हो सके, जिससे हम मनुष्य लोग सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ का सर्वहित में उचित उपयोग ले सकें। **यदि हमें सृष्टि का यथार्थ विज्ञान प्राप्त नहीं होगा, तो हम सृष्टि में कभी सुखी नहीं रह सकते और न ही सृष्टि के रचयिता परमात्मा का यथार्थ विज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।**

सारांशतः सृष्टि को जाने बिना हम भोग एवं मोक्ष दोनों को ही प्राप्त नहीं कर सकते, बल्कि सृष्टि का दुरुपयोग करके मात्र दुःख ही उठा सकते हैं और ईश्वर के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान न होने के कारण हम यथार्थ अध्यात्म से वंचित होकर नाना अन्धविश्वासों एवं रूढ़ियों में फँस जाते हैं। ऐसी स्थिति में चालाक एवं स्वार्थी लोग हमें विज्ञान एवं अध्यात्म दोनों के नाम पर लूटकर मानसिक एवं बौद्धिक दास बना लेते हैं। आज सम्पूर्ण विश्व में यही कुचक्र चल रहा है। कोई विज्ञान और विकास के नाम पर, तो कोई धर्म के नाम पर हमें पथभ्रष्ट कर रहा है। यही कारण है कि वैदिक काल में विज्ञान, तकनीक, राजव्यवस्था एवं धर्मगुरु (ऋषि और मुनि) संसार के सभी मनुष्यों को पावन शान्ति, सुख एवं आनन्द भरा वातावरण प्रदान करते थे, परन्तु आज विज्ञान, तकनीक, राजव्यवस्था एवं कथित धर्म,

सभी ऐसे ताण्डवकारी सिद्ध हो रहे हैं कि संसार में सुख, शान्ति और आनन्द का दर्शन भी उपलब्ध नहीं होता। न केवल मनुष्य, अपितु पशु-पक्षी भी इन व्यवस्थाओं से दुःखी एवं आतंकित हैं। चालाक एवं स्वार्थी लोग भले ही अंगुलियों पर गिनने योग्य हों, परन्तु वे सम्पूर्ण धरती के लिए अभिशाप सिद्ध हो रहे हैं और वे इतने शक्तिशाली हैं कि चाहकर भी कोई उनका कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकता।

ऋषि दयानन्द की दूरदृष्टि

कभी ऋषि दयानन्द सरस्वती ने इस गम्भीर समस्या को समझने का प्रयास किया था। उस समय विज्ञान और तकनीक का तो कोई आतंक नहीं था, परन्तु धर्म के नाम पर आतंक अवश्य समूची पृथ्वी पर फैला हुआ था। उन्होंने इसके लिए जो मुख्य कारण माना, वह यह था कि हम लोग वेद एवं ऋषियों के ग्रन्थों को ठीक-ठीक समझ नहीं पाये। दूसरे शब्दों में कहें तो मिथ्या ज्ञान (अज्ञान) ही सभी समस्याओं का कारण है। इसके लिए उन्होंने सत्यार्थप्रकाश नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा, परन्तु वे इतने से सन्तुष्ट नहीं हुए और उन्होंने चारों वेदों का भाष्य करने का संकल्प किया, परन्तु वे चारों वेदों के लगभग आधे मन्त्रों का भाष्य (वह भी अति संक्षिप्त रूप में) ही कर पाये और उन्हें वेदविरोधी लोगों ने संसार से विदा कर दिया। उनका मानना था कि चारों वेदों का भाष्य करने के लिए उन्हें चार सौ वर्ष का समय चाहिए, परन्तु वेदभाष्य के लिए उन्हें मात्र कुछ वर्ष ही मिले और उन वर्षों में भी वे एक स्थान पर बैठकर निश्चिन्तता से वेद भाष्य का कार्य नहीं कर पाये, तब हम यह कल्पना सहज ही कर सकते हैं कि उनका वेदभाष्य उनकी भावना और विचारों को पूर्णरूप में कितना प्रस्तुत कर सकता है? यह भी एक विचारणीय विषय है कि उनके साथ रहने वाले

पण्डितों ने उनके संस्कृत भाषा में किये गये भाष्य के साथ कितना न्याय किया? मेरा अपना अनुभव यह है कि उन पण्डितों ने हिन्दी अनुवाद करते समय जानकर अथवा अनजाने में भयंकर भूलें की हैं। उन भूलों को लेकर अनेक वेदविरोधी ऋषि के वेदभाष्य पर आज भी आक्रमण कर रहे हैं और भविष्य में ये आक्रमण और भी प्रबल होते जायेंगे।

ऋषि दयानन्द के पश्चात्

ऋषि दयानन्द के पश्चात् वेद के शेष भाग का आर्य विद्वानों द्वारा जो भी भाष्य किया गया है, वह ऋषि दयानन्द की शैली के पूर्णतः अनुकूल नहीं है, बल्कि अनेकत्र उन्होंने आचार्य सायण एवं महीधर आदि का अनुकरण किया है। इस कारण आर्यसमाज में उपलब्ध वेदभाष्य, ब्राह्मण ग्रन्थ एवं निरुक्त आदि के भाष्य भी गम्भीर पापों के पोषक बन गये हैं। पशुबलि, नरबलि, मांसाहार, अश्लीलता, स्त्री एवं पुरुष का दान अथवा विक्रय, रंगभेद, छुआछूत एवं विज्ञान के विरुद्ध अतिनिम्न स्तर की मूर्खतापूर्ण चर्चा जैसे गम्भीर पाप हमारे ग्रन्थों में देखे जा सकते हैं। जिन पापों को मिटाने के लिए ऋषि दयानन्द ने जन्म लिया, अनेक बार विषपान किया और अन्त में अपने शरीर को आहूत कर दिया। यदि हमारे ही ग्रन्थ भी उन्हीं पापों के पोषक बन जायें, तो ऋषि दयानन्द की 200वीं जयन्ती के कार्यक्रम आवश्यक होते हुए भी भला क्या लाभ दे सकेंगे?

वेद एवं आर्ष ग्रन्थ ही हमारे सनातन धर्म रूपी विशाल भवन की नींव हैं और दुर्भाग्य से इस नींव में मिथ्या अर्थ रूपी लोन लगा हुआ है और विधर्मियों की दृष्टि इस पर पड़ चुकी है, उधर हम हैं कि हमें इस विपदा का कोई भान और भय ही नहीं है। हम भवन की दीवारों पर सुन्दर रंग-रोगन करके प्रसन्न हो रहे हैं, हमारे प्रचार कार्यक्रम सतत चल रहे हैं, जबकि

हमारी सन्तानें मैकाले की शिक्षा पद्धति एवं पाश्चात्य कुसभ्यता के भयंकर प्रवाह में बही जा रही हैं। उनके संस्कार, भाषा, वेशभूषा एवं आचार-विचार कहीं से भी वैदिक तो क्या, भारतीय भी नहीं दिखाई देते। आर्यसमाज ने पिछले लगभग 150 वर्षों में बड़े-बड़े कार्य किये। देश को स्वतन्त्र कराने में महती भूमिका निभायी, समाज-सुधार के कार्य करने में भी हम अग्रणी रहे, बलिदानों की शृंखला में भी हम अनुपम रहे, परन्तु वेद की प्रतिष्ठा, जो इस संगठन एवं ऋषि दयानन्द का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य था, जिसे ऋषि ने परमधर्म कहा था, वह परमधर्म हमसे सर्वथा छूट गया।

ध्यातव्य है कि मरा हुआ धर्म हमें मार डालता है और रक्षित धर्म ही हमारी रक्षा करता है। तब वेद की दुर्दशा के चलते हमारे संगठन, देश अथवा विश्व का विनाश कैसे नहीं होगा? नींव के जर्जर रहते कोई भी भवन कैसे सुरक्षित रह सकता है। उसे गिराने के लिए तो किसी आँधी की भी आवश्यकता नहीं है, जबकि आज तो विश्व में अनेक वेदविरोधी भयंकर तूफान चल रहे हैं, जो हम पर बौद्धिक आक्रमण कर रहे हैं। ध्यान रहे बौद्धिक आक्रमणों का उत्तर केवल बुद्धि से ही दिया जा सकता है, अन्य कोई मार्ग नहीं है।

बन्धुओ और बहिनो! आप अपने हृदय पर हाथ रखकर विचार करें कि क्या हम ईमानदारी से कह सकते हैं कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है? यदि हाँ, तो फिर हमें मैकाले की शिक्षा और पश्चिमी कुसंस्कारों ने बंधक क्यों बना रखा है? क्या आधुनिक पद्धति से चलने वाले सभी विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, आई.आई.टी, आई.आई.एम, एम्स तथा सभी शिक्षण एवं अनुसन्धान संस्थानों को बंद कर देना चाहिए और केवल

गुरुकुलों को ही रहने देना चाहिए? क्या इसके लिए सभी विद्वान् एवं आर्यनेता, उद्योगपति आदि तैयार हैं? क्या केवल वर्तमान गुरुकुलों के आधार पर आपका परिवार और देश चल जायेगा? इसका उत्तर मैं आप पर भी छोड़ता हूँ।

मैं अपनी ओर से इसका उत्तर यह देना चाहता हूँ कि ऐसा सम्भव नहीं है। हमारे पास आधुनिक (पाश्चात्य) शिक्षा का कोई विकल्प वर्तमान में उपलब्ध नहीं है, इसलिए हम विवश भी हैं। दुर्भाग्य तो इस बात का है कि हम इसे अपनी विवशता भी नहीं मानते, बल्कि इस पर गर्व करते हैं और अपनी संतान को विदेश में पढ़ाना तो और भी अधिक गौरवपूर्ण मानते हैं। यदि ऐसा नहीं होता और हमने इसे केवल विवशता ही माना होता, तो हमारे संस्कार, हमारी भाषा और हमारी परम्पराओं का यों चीरहरण नहीं हो रहा होता। यह चीरहरण यह सिद्ध कर रहा है कि हमें और हमारी पीढ़ी को वेद और ऋषियों के ज्ञान पर ही नहीं, अपितु ईश्वर की सत्ता पर भी कोई विश्वास नहीं रह गया है। जैसे पौराणिक भाई मन्दिर में हनुमान चालीसा का पाठ करते हुए अथवा हनुमान जी की मूर्ति की पूजा करते हुए हनुमान जी के मुख से सूर्य निगलवा देते हैं और विद्यालय में जाकर सूर्य को पृथ्वी से 13 लाख गुणा बड़ा पढ़ाते हैं अर्थात् पूजा-स्थल पर कुछ कहना और विद्यालय अथवा सामाजिक जीवन में कुछ करना और कुछ कहना उनका स्वभाव बन गया है। हम आर्यसमाजी लोग उनके इस स्वभाव को और उनकी पूजा को पाखण्ड बताकर उनका उपहास करते हैं। क्या हम अपने हृदय से यह सोचेंगे कि हम अपने मंचों पर, सत्संगों में वेद को सर्व विज्ञानमय बताते हैं, आर्ष शिक्षा पद्धति की उच्च स्वर से प्रशंसा करते हैं, खूब नारे लगाते और लगवाते हैं और अपने बच्चों को महंगे अंग्रेजी विद्यालयों और विदेशों में पढ़ने के लिए भेजते हैं, इसे किस श्रेणी का कर्म

कहा जाए, यह हम सबको विचारना चाहिए। हमें अपनी भूलों पर विचार करना चाहिए। हमें कथनी और करनी की एकता रखनी चाहिए, इसी को सदाचार कहा जाता है।

हम विचारें कि क्या आर्यसमाज का प्रथम और तृतीय नियम मिथ्या है अथवा हममें वह बौद्धिक क्षमता नहीं है, जो वेद और ऋषियों के ग्रन्थों के गम्भीर विज्ञान को समझ सके। मेरा निश्चित मत है कि दूसरा कथन ही सत्य है कि यह हमारी बौद्धिक अक्षमता ही है, परन्तु उसको दूर करने के लिए क्या कभी कोई प्रयास किया गया और क्या अब किया जा रहा है?

क्या अपनी भूलों को भूल माना जा रहा है अथवा उनको सामान्य जन से छुपाया जा रहा है? ऋषि दयानन्द ने कहा है कि विद्वान् सब नहीं हो सकते, परन्तु धर्मात्मा तो सब हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में सबको धर्मात्मा बनने का प्रयास तो करना ही चाहिए और अपनी अथवा अपने पूर्ववर्ती विद्वानों की कमियों को स्वीकार तो करना चाहिए । उन कमियों को उजागर करने वालों का धन्यवाद तो करना चाहिए और यदि कोई उन कमियों को दूर करके उन प्रकरणों से किसी गम्भीर विज्ञान का प्रकाश करता है, तो क्या सम्पूर्ण विश्व के वेदभक्तों को उसके साथ तन-मन-धन से पूर्णरूपेण नहीं जुड़ जाना चाहिए? उसका विरोध करने से बढ़कर तो कोई पाप हो ही नहीं सकता, क्योंकि वह विरोध वेद का विरोध कहलायेगा।

क्या वेद के यथार्थ विज्ञान को बचाने और भूलों को उजागर करके सुधारने से बड़ी वेदभक्ति, समाज सेवा और देशभक्ति अन्य कुछ हो सकती है? क्या वेद व वैदिक संस्कृति के बिना भारत कभी भारत रह सकता है? तब राष्ट्र एवं वेद दोनों क्षेत्रों के विचारकों को इस विषय में मेरे साथ आना ही चाहिए, अन्यथा उनका चिन्तन सब व्यर्थ हो जायेगा। जरा विचारें कि

क्या इससे बड़ा अन्य कोई पुनीत कर्म संसार में कोई हो सकता है? निश्चित ही नहीं हो सकता, क्योंकि गीता में योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है-

'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'

अर्थात् ज्ञान से बढ़कर पवित्र वस्तु इस सम्पूर्ण लोक में दूसरी कोई नहीं है।

हम अपने महापुरुषों की कमी निकालने में तो निपुण हैं। कोई आर्य हिन्दुओं के हृदयसम्राट् भगवान् श्रीराम व भगवान् श्रीकृष्ण की योग में परीक्षा लेकर उन्हें 70-80 प्रतिशत अंक देकर स्वयं को उन सूर्यसम तेजस्वी विश्वनायकों से अधिक योग्य सिद्ध कर रहा है। उसे महर्षि वाल्मीकि एवं महर्षि व्यास के कथनों में कोई सत्यता नहीं दिखाई देती। कोई भीष्म पितामह, धर्मराज युधिष्ठिर, पृथ्वीराज चौहान, महाराणा प्रताप आदि की भूलों को प्रकाशित करने में ही दूरदर्शिता समझ रहा है, परन्तु अपने-अपने गुट अथवा अपने गुरुओं, दादा गुरुओं, जिनका उपर्युक्त महापुरुषों के समक्ष तृणसम भी महत्त्व नहीं, की कमी को छुपाने का प्रयास कर रहा है और यदि कोई उनकी कमी निकाल दे, तो उसे शत्रु मानकर सवर्त्र उसकी निन्दा करवाते हैं। यह कैसा आर्यत्व है?

अरे! आर्य कहाने वालो! ऋषि दयानन्द ने महर्षि ब्रह्मा से लेकर जैमिनी पर्य्यन्त ऋषियों को अपना आदर्श बताया था और स्वयं को उन महान् ऋषियों का अनुचर कहा था, परन्तु हमने इन महापुरुषों में से अपवाद को छोड़कर, सभी को कूड़ेदान में डाल दिया और इस दुर्भाग्य पर आर्य जगत् में कोई दर्द कभी किसी ने व्यक्त नहीं किया। मेरे भाईयो एवं बहिनो! क्या परमर्षि ब्रह्मा, भगवान् शिव, भगवान् विष्णु, देवराज इन्द्र, देवगुरु बृहस्पति, देवर्षि नारद, वेदवेत्ता हनुमान्, महर्षि वाल्मीकि, महर्षि अगस्त्य, महर्षि भरद्वाज आदि के बारे में आप कहीं कुछ सुनते वा पढ़ते हैं? पौराणिक

कथावाचक कम से कम इन महामानवों (देवों) का नाम तो ले लेते हैं, परन्तु हमारे यहाँ तो इनका नाम भी नहीं बचा है, तब उनके महान् चरित्र एवं विज्ञान को कैसे जानने का प्रयास करेंगे? ऐसा प्रतीत होता है **कि आज समाज में न तो चरित्र का मूल्य रहा है और न वैदिक विज्ञान का, मात्र आडम्बर, धन, यश एवं दिखावे की नम्रता ही सबको अच्छी लगती है।**

हमारा सर्वोपरि कर्त्तव्य क्या?

हमारी इस विषय पर विवाद वा संवाद करने में तो रुचि है कि मन्त्र के प्रारम्भ में 'ओ३म्' बोलें वा नहीं? तीन समिधा की चार मन्त्रों से आहुति दें वा नहीं? जीवात्मा साकार है वा निराकार? वेद की शाखाओं के मन्त्र वेद हैं वा नहीं? परन्तु हमारी यह जानने की कोई रुचि नहीं है कि वेद का अस्तित्व कैसे बचे? वेदभाष्यों में विद्यमान पापों के आधार पर डॉ. जाकिर नाइक जैसे पापी हमारी सन्तति को धर्मभ्रष्ट कर रहे हैं, कोई ईसाई वा वामपन्थी बन रहे हैं, उनको कैसे रोका जाये? अपनी कमियों को कैसे दूर किया जाये? इस बात पर विचार किये बिना क्या वेद वा देश बच जायेगा?

ऐसी स्थिति में मैं आप सबसे निवेदन करता हूँ कि मिटते हुए वेद को बचाने के लिए आपको ईमानदारी से उद्योग करना चाहिए। जो कार्य आप वर्तमान में कर रहे हैं, उनका भी अपना महत्त्व है, क्योंकि वृक्ष के पत्तों को सींचने का भी कुछ महत्त्व होता है, परन्तु सर्वोच्च प्राथमिकता जड़ को सींचने की ही होती है, क्योंकि उसको सींचे बिना सम्पूर्ण वृक्ष सूख जाता है। वेदरूपी जड़ आज सूख रही है, सूख चुकी है और इसको बचाने का एकमात्र उपाय यह है कि इसके यथार्थ विज्ञान को प्रकाशित करने का गम्भीर पुरुषार्थ सभी योग्य विद्वानों द्वारा किया जाये और सभी आर्य नेताओं

तथा आर्य श्रेष्ठियों द्वारा उन्हें सम्पूर्ण सहयोग दिया जाये। यदि ऐसा हो जाता है, तो सुदूर भविष्य में आर्यसमाज और हमारा प्यारा भारत विश्व का नायक बन सकता है एवं मैकाले के प्रवाह को न केवल भारत से, अपितु विश्व से भी समाप्त किया जा सकता है।

यहाँ कुछ आर्यजन विचार करेंगे कि हमारे विद्वानों के भाष्यों में ऐसे गम्भीर दोष वा पाप कैसे हो सकते हैं? उनका यह विचारना स्वाभाविक ही है, क्योंकि वे ग्रन्थों को तो पढ़ते नहीं, केवल विद्वानों के प्रवचनों को ही सुनते रहते हैं और उन्हें सुनकर ही उनके भक्त बन कर वैदिक संस्कृति पर गर्व करते रहते हैं। वास्तव में देखा जाये कि यदि उन्हें अपनी संस्कृति पर गर्व होता, तो वे इस बात का उत्तर अपनी बुद्धि से, विद्वानों से अथवा अपने सम्मानित वरिष्ठ आर्यजनों से अवश्य पूछते कि वेदों अथवा ऋषियों का विज्ञान कहाँ है? हमने अब तक वेदों से कौनसा विज्ञान सीखा है? क्यों हमारी शिक्षा और परम्परा में वह दिखाई नहीं देता? क्यों हमें यूरोप, अमेरिका आदि देशों में अपने बच्चों को पढ़ाना गौरवपूर्ण लगता है? क्यों हमारे गुरुकुल आधुनिक होने के नाम पर पाश्चात्य की दासता में आबद्ध होते जा रहे हैं? क्या आर्ष विद्या अथवा वैदिक ज्ञान पश्चिमी विज्ञान से पीछे है? यदि हाँ, तो आर्यसमाज का पहला और तीसरा नियम तो हमने स्वतः ही मिथ्या मान लिया, तब दूसरों को प्रवचन क्यों किया जा रहा है?

जो व्यक्ति, समाज वा राष्ट्र आत्मनिरीक्षण नहीं करता, अपने स्वाभिमान की रक्षा नहीं करता, वह अधिक दिनों तक जीवित वा सुखी नहीं रह सकता, इसलिए मैं आत्मनिरीक्षण कराने के लिए केवल कुछ उदाहरण आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ।

ये भाष्य किसे दिखाएँ?

उनमें से एक उदाहरण ऋग्वेद का एक मन्त्रांश है, जिसकी व्याख्या महर्षि यास्क ने अपने ग्रन्थ निरुक्त में की है। मेरे पास निरुक्त की अनेक टीकाएँ और हिन्दी अनुवाद उपलब्ध हैं, उनमें जो भी पाप विद्यमान हैं, उसे पढ़कर आप दंग भी रह जायेंगे और लज्जित भी। आप यह सोचने को विवश हो जायेंगे कि ऐसा भाष्य पढ़ना और पढ़ाना हमें कहाँ ले जायेगा? इनको पढ़ने वाले विद्यार्थियों एवं उन्हें पढ़ाने वालों की मानसिकता पर क्या प्रभाव पड़ेगा? क्या वे ब्रह्मचर्य का पालन कर पायेंगे?

वह मन्त्र इस प्रकार है–

त्रिः स्म माह्नः श्नथयो वैतसेन...

[निरुक्त 3.21, ऋ.10.95.5]

आचार्य सायण (ऋग्वेदभाष्यम्)

अनेन पुरुरवसमेव संबोध्योक्तवती। हे पुरूरवः त्वं मा मामह्नोऽहनि वैतसेन दंडेन पुंव्यंजनेन चिस्त्रिवारं॥ द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्। पा.५.४.७८.॥ श्नथयः स्म। अश्नथयः। अताडयः॥ कृत्वोऽर्थप्रयोगे। पा.२.३.९४.। इति कालवाचिनोऽहःशब्दादधिकरणे षष्ठी॥ उतापि च। स्मेति पूरणः। अव्यत्यै। सपत्नीभिः सह पर्यायेण पतिमागच्छति सा व्यती। न तादृश्यव्यती। तस्यै मे मह्यं पृणासि। पूरयसि। एवं बुध्या हे पुरुरवः ते तव केतं गृहमन्वायं। अन्वगमं पूर्वं। हे वीर राजा त्वं च मे मम तन्वः शरीरस्य तत्तदासीः। अभवः। मुखयितेति शेषः। परमप्येवं मंतव्यं किमिति कातरो भवसीत्युवाच।[१]

[1] इस भाष्य का हिन्दी अनुवाद आप वही समझ सकते हैं, जो सातवलेकर जी ने किया है।

पण्डित दामोदर सातवलेकर (ऋग्वेदभाष्यम्)

हे पुरूरवः = पुरूरव! **तू मां अह्नः वैतसेन त्रिः श्नथयः स्म** = मुझे दिन में तीन बार पुरुष दण्ड से ताड़ित करता था। मेरा उपभोग करता था। **उत अव्यत्यै मे पृणासि** = और सपत्नी के साथ मेरी प्रतिद्वन्द्विता नहीं थी, तू मेरे अनुकूल होकर मुझे सन्तुष्ट करता था। **ते केतं अनु आयाम्** = इस आशा से ही मैं तेरी शरण में आती थी। **हे वीर** = शूरवीर! **तू मे तन्वः तत् राजा आसीः** = मेरे शरीर का उस समय स्वामी होता था।[२]

पण्डित भगवद्दत्त रिसर्च स्कॉलर (निरुक्त-शास्त्रम्)

वैतसः, यह पुरुष के प्रजननेन्द्रिय के नाम हैं। **वैतसः,** (**वितस्तम्**) संकुचित=क्षीण होता है। [उर्वशी की ऋक् है-] तीन वार (**मा**) मुझे (**अह्नः**) दिन में (**श्नथयः स्म**) ताड़न किया (**वैतसेन**) प्रजनन से।[३]

स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजको विद्यामार्तण्डः (ऋग्वेदभाष्यम्, अजमेर)

भा. अन्वयार्थ - **(उत)** अपि- हाँ **(पुरुरवः)** हे बहुत प्रशंसक पति या हे बहुशासक राजन् **(मा)** मुझ तेरी पत्नी या प्रजा को वह व्यभिचारी या दस्यु **(अह्नः-त्रिः)** दिन में तीन वार **(वैतसेन)** पुरुषेन्द्रिय से-गुप्तेन्द्रिय से **(श्नथयः स्म)** ताड़ित करे पीड़ित करे यह सम्भावना है **(अव्यत्यै मे)** अविपरीता-अनुकूला हुई मुझको **(पृणासि)** प्रसन्न कर तृप्त कर, ध्यान

---

[2] ये दोनों महानुभाव उवर्शी को कामुकी सिद्ध कर रहे हैं, जो अपनी सौतन से ईर्ष्या करती हुई अपने पति को उलाहना दे रही है।

[3] पण्डित जी ने यह अश्लील अनुवाद कर तो दिया, परन्तु वे स्वयं इससे सहमत नहीं हैं, इस कारण उन्होंने अपने भाष्य में वैतस को आपः का रूपान्तर भी कह दिया है। उर्वशी को भी स्त्री नहीं माना, अपितु अन्तरिक्षस्थ पदार्थ माना है, परन्तु वे कुछ भी स्पष्ट नहीं कर पाये। हाँ, उन्होंने कुछ सोचा तो सही, परन्तु इसका अनुवाद नहीं करना था।

रख, कोई व्यभिचारी या दस्यु न आ घुसे **(ते केतमनु)** तेरे निर्देश के अनुसार **(आयम्)** मैं पत्नी या प्रजा तुझे प्राप्त हुई हूँ **(तत्)** इस हेतु **(वीर)** वीरपति या राजन् **(मे तन्वः राजा-आसीः)** तू मेरे आत्मा का-आत्मीय राजा है।

भावार्थ- किसी भी घर में या राष्ट्र में व्यभिचारी या दस्यु को घुसने न दिया जावे। अन्यथा पत्नी को और प्रजा को बलात् सम्भोग से वारम्बार पीड़ित करेगा, अनुकूल पत्नी तथा प्रजा को सदा प्रसन्न तृप्त रखे, पति या राजा पत्नी या प्रजा का आत्मीय साथी है।[४]

स्वामी ब्रह्ममुनिः परिव्राजको विद्यामार्तण्डः (निरुक्तसम्मर्शः)

वैतसः-वितस्तं वितस्तं क्षीणभावो विगतो यस्य स वितसः। वितस एव वैतसः स्वार्थो वितस् क्विप् भूते वितस् स्वार्थेऽण् = वैतसः मन्त्रस्याश्लीलविषयत्वात्तदर्थो न क्रियते।[५]

प्रो. ज्ञानप्रकाश शास्त्री (आचार्य दुर्गकृत-ऋज्वर्थाख्यावृत्तिसमेतम्)

उर्वश्या आर्षम्। त्रिष्टुप्। सा पुरूरवसा मा गास्तिष्ठेत्युक्ता सत्यनयर्चा पुरूरवसं प्रत्यब्रवीत्। हे पुरूरवः! त्रिः स्म माह्नः त्रिरह्नो मामवधीस्त्वं वैतसेन शिश्नदण्डेन पूर्वम्।[६]

---

4 यहाँ 'दिन में तीन बार', ऐसा अर्थ करते समय कुछ विचारा ही नहीं, बल्कि भाषानुवाद कर दिया है।

5 यहाँ स्वामी ब्रह्ममुनि जी ने मन्त्र को अश्लील बताकर भाष्य करना छोड़ दिया, परन्तु इन्होंने अपने ऋग्वेद भाष्य में इसका भाष्य कर दिया। वहाँ पुरुरवा को पत्नी-व्यभिचार का अपराधी न बताकर किसी तीसरे व्यक्ति को बता दिया है।

6 यहाँ भी पुरुरवा की पत्नी उर्वशी अपने पति के दिन में तीन बार बलात्कार से पीड़ित दिखाई गयी है।

पण्डित छज्जूराम शास्त्री आदि

हे पुरूरवः! तूने मा मुझको त्रिः अह्नः दिन में तीन बार वैतसेन उपस्थेन्द्रिय से श्नथयः मारा है।

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री (ऋग्वेद भाष्य, सार्वदेशिक)

पदार्थ – हे पुरूरवस्! तू (माम्) मुझे (वैतसेन) वेत के दण्ड से (अह्नः) दिन में (त्रिः) तीन वार (श्नथयः) ताड़ित करता है, (उत) और (अव्यत्यै) मुझ एक मात्र पत्नी को (पृणासि स्म) हर प्रकार से पूरित करते हो, इसी लिए (ते) तेरे (केतम्) घर को मैं विद्युत् (आयम्) प्राप्त हूँ अर्थात् विद्युत् मेघ में अपना स्थान बनाए हुए हैं (वीर) हे वीर तू (तत्) इस लिए (मे) मेरे (तन्वः) विद्युन्मय ढांचे का (राजा) राजा (आसीः) होता है।[7]

भावार्थ – हे मेघ तू दिन में प्रातः, दो पहर और सायम् जब हो मुझे ताड़ित करता है मुझे सब प्रकार से पूरित भी करता है। यही कारण है कि मैं विद्युत् मेघ में अपना स्थान बनाये रहती हूँ। हे वीर तू मेरे विद्युन्मय ढांचे का राजा होता है।

विद्यामार्तण्ड पण्डित सीताराम शास्त्री (यास्कमुनिप्रणीतं निरुक्तम्)

'त्रिः स्म' इस मन्त्र में उर्वशी और पुरूरवा की पुराण प्रसिद्ध कथा का मूल है। पुरूरवा ने उर्वशी से कहा कि– 'तू मत जा, ठहर', उस पर उर्वशी ने कहा कि– ''हे पुरूरवः ? 'अह्नः' दिन के 'त्रिः' तीन वार 'त्वम्' तूने 'मा' मुझे 'वैतसेन' शिश्नदण्ड से 'श्नथयः' ताडन किया है'' इत्यादि।[8]

---

[7] इन्होंने अश्लीलता को छुपाने के लिए 'वैतस' का अर्थ करते समय निरुक्त को उपेक्षित कर दिया है।

[8] यहाँ भी उर्वशी की वही व्यथा है, जो अपने पति द्वारा ही यौन पीड़ित है।

श्रीचन्द्रमणि विद्यालंकार पालीरत्न (वेदार्थ–दीपक, निरुक्तभाष्य)

'त्रिः स्म माह्नः' आदि मन्त्र को व्याख्या 10.32 में देखिए।[९]

आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि

'वैतस' पुरुष के जननेन्द्रिय के वाचक है। 'शेप' शब्द स्पर्शार्थक 'शप' धातु से बनता है, क्योंकि उसका स्पर्श विशेष महत्त्व रखता है] और 'वैतस' वितस्त अर्थात् लम्बायमान हो जाने से [अथवा 'तसु उपक्षये' धातु से बनने से सम्भोगकाल में उपक्षय क्षीणता से रहित होने से 'वैतस' कहलाता है]। उसका उदाहरण निम्न मन्त्र में पाया जाता है। दिन में तीन बार शिश्न [जननेन्द्रिय] से मुझको मारते थे।

पण्डित जयदेव शर्मा विद्यालंकार (ऋग्वेद भाष्य)

हे सेनानायक! तू (मां) मुझको (अह्नः) न नाश होने वाले, (वैतसेन) ज्ञानमय प्रकाश से (त्रिः श्नथयः) तीनों प्रकार से बन्धन से युक्त कर। (उत) और (मे अव्यत्यै) मेरे अनुकूल आचरण के लिये मेरा (पृणासि) पालन पोषण कर। हे (पुरूरवः) बहुतों को आज्ञा देने वाले शासक! मैं (ते केतम् अनु आयम्) मेरी शरण को प्राप्त करूं। हे (वीरः) शूरवीर तू! (मे तन्वः) मेरे विस्तृत राष्ट्र का (तत् राजा आसीः) राजा हो।[१०]

यहाँ भूल यह हुई है कि सबने 'वैतस' के निर्वचन से इस पद का अर्थ उपस्थेन्द्रिय निकाला है। वास्तव में निरुक्त 3.21 में न तो 'शेपः' और

---

[9] विद्यालंकार जी यहाँ भाष्य करने से बच निकले और कह गये कि आगे करेंगे, जबकि 10.32 में क्या, सम्पूर्ण निरुक्त में ही यह मन्त्र कहीं अन्यत्र नहीं आया है।

[10] केवल यही भाष्य पठनीय है। ये निरुक्त की उपेक्षा करके ही ऐसा भाष्य कर पाये हैं, अन्य सभी भाष्य जलाकर नष्ट करने योग्य हैं।

न ही 'वैतस' का अर्थ उपस्थेन्द्रिय है। 'पुंस्' का अर्थ पुरुष और प्रजनन का अर्थ भी रतिक्रिया नहीं है। सभी भाष्यकार भटक गये हैं। ये सभी विद्वान् उस स्तर के हैं, जिस स्तर के विद्वान् आज पौराणिक वा आर्यजगत् में नहीं रहे। जब ऐसे विद्वानों से निरुक्त भाष्य में भारी भूल हो गई, तो वर्तमान विद्वानों की तो बात ही क्या कहें? मैंने निरुक्त के निर्वचनों का उपयोग करके क्या भाष्य किया है, यह अब यहाँ दर्शाते हैं।

ध्यातव्य है कि निरुक्त में इस मन्त्र का केवल चौथाई भाग ही दिया गया है, इस कारण भाष्यकारों ने भाष्य भी चौथाई भाग का ही किया है।

ऋषि दयानन्द की पीड़ा थी कि पौराणिक सायण व महीधर आदि वेदभाष्यकारों ने वेद को अपमानित किया है। अब मेरी पीड़ा यह है कि आज ऋषि दयानन्द का नाम लेने वाले भी उन्हीं सायण व महीधर का अनुसरण करके वेदों को अपमानित कर रहे हैं। उस समय पौराणिकों ने ऋषि को वेद विरोधी माना, आज मेरे अपने भी यही कर रहे हैं।

मेरा त्रिविध भाष्य—

त्रिः स्म माह्नः श्नथयो वैतसेनोत स्म मेऽव्यत्यै पृणासि।
पुरूरवोऽनु ते केतमायं राजा मे वीर तन्वस्तदासीः। (ऋ.10.95.5)

ऋषि एवं देवता – इस मन्त्र का ऋषि 'उर्वशी' एवं देवता 'पुरुरवा ऐलः' है। इसका छन्द आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् है। [**इला** = अन्ननाम (निघं.2.7), पशव इला (जै.1.300), अयं वै लोक इला (जै.1.307)। **पुरुरवः** = वाग्वा उर्वशी पुरुरवा असीति प्राण एव तन्मिथुनम् (मै.3.9.5)। **उर्वशी** = उर्वश्यप्सरा। उर्वभ्यश्नुते। उरुभ्यामश्नुते। उरुर्वा वशोऽस्याः। अप्सरा अप्सारिणी। (नि.5.13), पुरुरवाः। रोरुयते। (नि.10.46)] इसका अर्थ

यह है कि प्राण रश्मियों में रमण करने वाली आकाश तत्त्व में व्याप्त दो प्रकार की आच्छादक शक्तियों से परिपूर्ण विद्युत् से इस छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से विभिन्न संयोजक कण तीव्र तेज, बल एवं ध्वनियों से युक्त होते हैं।

आधिदैविक भाष्य—

(**वैतसेन**) पूर्वोक्त वैतस संज्ञक गायत्री आदि विभिन्न छन्द रश्मियाँ (**अह्नः**) [**अह्नः** = अहरेव सविता (गो.पू.1.33), अहः स्वर्गः (श.13.2.1.6), अहर्वै स्वर्गो लोकः (ऐ.5.24), अग्निर्वाऽहः, सोमो रात्रिः (श.3.4.4.15)] उन लोकों के केन्द्रीय भाग, जहाँ नाना प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति होती है, में (**मा, त्रिः, श्नथयः**) [**श्नथति** = वधकर्मा (निघं.2.19)] तीन प्रकार के असुर पदार्थों को नष्ट करके सम्पूर्ण पदार्थ समूह का मन्थन करके सूर्यादि लोकों के अन्दर उर्वशी संज्ञक विद्युत् को नष्ट नहीं होने देती हैं। ये तीन प्रकार के असुर पदार्थ हैं- असुर, पाप्मा एवं राक्षस। इसके साथ ही वे वैतस संज्ञक रश्मियाँ तारों के अन्दर विद्यमान तीनों प्रकार के अग्नि यथा गार्हपत्य, आहवनीय एवं दाक्षिणाग्नि (अन्वाहार्य) एवं उनके क्षेत्रों में विद्यमान पदार्थ को भी वे गायत्री आदि रश्मियाँ ताड़ती हैं अर्थात् मथती हैं। ध्यान रहे आहवनीय अग्नि तारे के नाभिक में विद्यमान होती है, जहाँ नाभिकीय संलयन की क्रियाएँ होती हैं। दाक्षिणाग्नि तारे के सन्धिभाग पर विद्यमान होती है और तारे के शेष विशाल भाग में गार्हपत्य अग्नि विद्यमान होती है। इस प्रकार सम्पूर्ण तारे में वैतस नामक गायत्री आदि रश्मियाँ भारी उथल-पुथल उत्पन्न करती हैं।

(**उत, अव्यत्यै, मे, पृणासि, स्म**) वे पुरुरवा संज्ञक पदार्थ वैतस संज्ञक गायत्री आदि रश्मियों से ताड़ित विद्युन्मय पदार्थों को हर प्रकार से परिपूर्ण

करते हैं अर्थात् सम्पूर्ण तारे में वे गायत्री आदि रश्मियाँ व्याप्त होकर अन्य रश्मि आदि पदार्थों को अग्रिम चरण की प्रक्रियाओं के लिए अनुकूल बनाती हैं।

(**पुरूरवः, ते, केतम्, आयम्, अनु**) [**केतम्** = प्रज्ञानाम (निघं.3.9), अन्नं केतः (श.6.3.1.19)] वह उर्वशी संज्ञक विद्युत् पुरुरवा संज्ञक संयोज्य कणों के संयोग आदि कर्मों में अपनी दिव्य आभा के साथ व्याप्त होती है अर्थात् तारों के अन्दर विद्युत् युक्त कण ही परस्पर संगत हो सकते हैं।

(**तत्, वीर**) इस कारण वे पुरुरवा संज्ञक संयोज्य कणादि पदार्थ ['वीरः' यह पद 'वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु' धातु से व्युत्पन्न होता है। **वीरः** = वीरो वीरयत्यमित्रान्। वेतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः। वीरयतेर्वा। (नि.1.7)] वीरत्व को प्राप्त होते हैं अर्थात् वे तीव्रगति से इधर-उधर दौड़ते हुए, एक-दूसरे पर आक्रमण करते हुए और बाधक असुरादि पदार्थों को नष्ट करते हुए (**मे, तन्वः**) उर्वशी संज्ञक वाक् रश्मियों और उनसे उत्पन्न विद्युत् के आयतन अर्थात् फैलाव में (**राजा, आसीः**) तीव्रता से चमकने लगते हैं। 'राजा' पद के विषय में ऋषियों का कथन है- 'स राजसूयेनेष्ट्वा राजेति नामाधत्त' (गो.पू.5.8.), 'राजा वै राजसूयेनेष्ट्वा भवति' (श.5.1.1.12)। उधर राजसूय के विषय में कहा गया है- 'यद्वै राजसूयं स वरुणसवः' (काठ.37.6)

उस समय तारों के केन्द्रीय भाग में राजसूय यज्ञ अर्थात् वरुण देवता का यज्ञ प्रारम्भ हो जाता है और उस यज्ञ के पश्चात् ही तारे का केन्द्रीय भाग और उसमें विद्यमान संयोज्य कण राजा की संज्ञा को प्राप्त करते हैं। वरुण देवता के यज्ञ के विषय में ऐतरेय ब्राह्मण के 33 वें अध्याय में विस्तार

से वर्णन है, जो वस्तुतः निर्माणाधीन तारों के अन्दर नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया का महान् विज्ञान है, जिसे हमने 'वेदविज्ञान-आलोकः' नामक ग्रन्थ में समझाया है। दुर्भाग्य से इस प्रकरण, जिसे शुनःशेप अथवा हरिश्चन्द्र उपाख्यान नाम से जाना जाता है, के वास्तविक स्वरूप को 'वेदविज्ञान-आलोकः' के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी नहीं जाना जा सकता।

यहाँ कोई यह कह सकता है कि चलो आधिदैविक भाष्य हो गया, परन्तु इसका आधिभौतिक भाष्य तो वही अश्लील होगा, जो अन्य भाष्यकारों ने किया है। ऐसे महानुभावों के लिए अन्य दोनों प्रकार का भाष्य-

आधिभौतिक भाष्य—

(**उत, पुरूरवः**) [उत अपि (नि.1.6)] व्यापक वैदुष्य से सम्पन्न अनेक शास्त्रों का उपदेश करने वाला विद्वान् राजा वा पति (**मा, अह्नः, त्रिः, वैतसेन, श्नथयः**) मुझ प्रजा वा पत्नी, जो उर्वशीरूप है अर्थात् व्यापक रूप से अपनी वाणी को वश में करके अपने राजा वा पति के स्वामित्व में रहती है, के त्रिविध दुःखों को अपने न्याय वा पुरुषार्थ के प्रकाश में अपने पराक्रम से नष्ट करने का प्रयास करता है अर्थात् उसे इन दुःखों से पीड़ित नहीं होने देता है। यहाँ तीन प्रकार का अर्थ है- आधिभौतिक अर्थात् किसी अन्य प्राणी से प्राप्त दुःख, आध्यात्मिक अर्थात् शारीरिक व मानसिक रोग और आधिदैविक दुःख अर्थात् प्राकृतिक आपदायें। विद्वान् धर्मात्मा पुरुष (राजा वा पति) अपने धर्म से इन सबको दूर करने में समर्थ होता है।

यहाँ 'वैतस' का निर्वचन करते हुए महर्षि यास्क लिखते हैं- 'वैतसो वितस्तं भवति' अर्थात् जिसका तेज उचित अवसर पर अर्थात् किसी निमित्त

के उपस्थित होने पर ही प्रकट होता है, अन्यथा शान्त वा अदृश्य रहता है। यह किसी भी तेजस्वी व्यक्ति के लिए ऐसा ही देखा जाता है। इसको हम इस उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं- किसी व्यक्ति का ज्ञान वा बल तब तक प्रकट नहीं हो सकता, जब तक वह उसका प्रयोग नहीं करता, उसी ज्ञान, बल व पराक्रम को यहाँ वैतस कहा गया है। (**मे, अव्यत्यै, पृणासि, स्म**) इस पराक्रम से अनुकूल हुई प्रजा वा पत्नी को सभी प्रकार के सुखों से परिपूर्ण करता है। इसका अर्थ है कि जब राजा व पति का अपनी प्रजा वा पत्नी के मध्य पारस्परिक प्रेम व सहकार का सम्बन्ध होता है, तब वह राजा वा पति अपनी उस प्रजा वा पत्नी को सभी प्रकार के सुखों से भर देता है। (**अनु, ते, केतम्, आयम्**) ऐसी वह अनुकूल प्रजा पत्नी अपने राजा वा पति के निर्देशों वा परामर्श को निरन्तर प्राप्त करती रहती है और तदनुकूल व्यवहार करती रहती है। (**मे, वीर, तन्वः, तत्, राजा, आसीः**) [**तनूः** = आत्मा वै तनूः (श.6.7.2.6, 7.3.1.23) वह प्रजा वा पत्नी अपने राजा वा पति से कहती है कि अपने आध्यात्मिक तेज व न्यायादि से प्रकाशित हे वीर राजन् वा पति! आप हमारे आत्मा के समान हैं और हम आपका शरीर रूप हैं।

भावार्थ—

> विद्वान् राजा अपनी प्रजा को तथा पति अपनी पत्नी को तीनों प्रकार के दुःखों से दूर करने का प्रयत्न करता रहता है। ऐसा व्यवहार करके राजा अपनी प्रजा तथा पति अपनी पत्नी को सर्वथा सर्वदा प्रसन्न रखने का प्रयत्न करे। ऐसे सुखप्रद राजा वा पति के निर्देशों वा परामर्श को प्रजा वा पत्नी प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करती है तथा उस राजा वा पति को उसकी प्रजा वा पत्नी अपने आत्मा के समान प्रिय मानती है। यहाँ यह शिक्षा मिलती है कि राजा व

> प्रजा तथा पति वा पत्नी के मध्य कभी वैमनस्य, मतभेद वा कटुता का व्यवहार नहीं होना चाहिए, बल्कि इनके मध्य वही सम्बन्ध होना चाहिए, जो सम्बन्ध आत्मा व शरीर के मध्य होता है, जो कभी एक-दूसरे के बिना नहीं रह सकते।

आध्यात्मिक भाष्य—

(**उत, पुरूरवः**) सृष्टि के आदि में वेद विद्या का व्यापक उपदेश देने वाले आचार्य वा परमेश्वर (**मा, अह्नः, त्रिः, वैतसेन, श्नथयः**) हमारी नियत प्रजा को अपने सदुपदेश वा उपासना के प्रकाश में [वैतसो वितस्तं भवति] दोषों को दूर करने की क्षमता के द्वारा नष्ट करे। आचार्य के सदुपदेश व परमेश्वर की उपासना में वह शक्ति होती है, जो अपने शिष्यों वा भक्तों के दोषों को नष्ट कर देती है। इसके लिए उन शिष्यों वा भक्तों को भी स्थिर वा नियत बुद्धि वा नियत वाणी वाला होना चाहिए। जिसकी बुद्धि व वाणी नियन्त्रित नहीं है, उसे न तो आचार्य और न परमात्मा ही दोषों वा पापों से बचा सकता है।

(**मे, अव्यत्यै, पृणासि, स्म**) जब शिष्य अपने आचार्य तथा भक्त अपने उपास्य परमात्मा की मर्य्यादा के अनुकूल आचरण करने वाले हो जाते हैं, तब आचार्य अपने शिष्यों तथा ईश्वर अपने भक्तों को सब सुखों से भर देते हैं। आचार्य ब्रह्म विद्या के द्वारा और ईश्वर उनकी बुद्धि को सर्वथा निर्दोष बनाकर तथा संस्कारों को दग्धबीज करके सुखों से भर देते हैं।

(**अनु, ते, केतम्, आयम्**) ऐसे शिष्य वा भक्त अपने आचार्य वा ब्रह्म के निर्देशों में सर्वथा स्वयं को सम्प्राप्त रखते हैं अर्थात् वे सदैव उन निर्देशों का पालन करते हुए अपने जीवन को उत्तरोत्तर श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर व श्रेष्ठतम बनाने का प्रयास करते हैं। (**मे, वीर, तन्वः, तत्, राजा, आसीः**) अविद्यान्धकार

को दूर भगाने वाला आचार्य वा महतो महान् लोकों तक को कम्पायमान करने वाला सम्पूर्ण सृष्टि को अपनी ज्योति से प्रकाशित करने वाला परमेश्वर अपने शिष्यों वा भक्तों के आत्मा के समान होता है।

भावार्थ—

जो शिष्य वा भक्त संयत वाणी वा स्थिर बुद्धि से युक्त होते हैं, उन्हें आचार्य वा परमेश्वर अपने दोष-निवारक उपदेश वा ज्ञान के द्वारा निष्कलंक जीवन वाला बनाते हैं। इससे वे शिष्य वा भक्त अपने आचार्य वा परमात्मा की मर्य्यादा के अनुकूल आचरण करने वाले हो जाते हैं। तब निष्कलंक बने शिष्यों वा भक्तों का जीवन सुख व आनन्द से भर जाता है। ऐसे शिष्य वा भक्त अपने आचार्य वा परमात्मा के आदेशों का अनुसरण करने वाले होकर अपने आचार्य वा परमात्मा को अपने आत्मा के समान प्रिय मानते हैं। इसका अर्थ यह है कि शिष्य-आचार्य एवं भक्त व भगवान् के मध्य वैसा ही अटूट सम्बन्ध होना चाहिए, जैसा शरीर व आत्मा के मध्य होता है।

आपका कर्त्तव्य

मेरे इस तीन प्रकार के भाष्य पर आप सभी आर्यजन एवं सभी वेदभक्त विचार करें और अपने परिचित प्रसिद्ध वैदिक विद्वानों को इसे पढ़ाकर उनकी सम्मति जानने का प्रयास करें। यदि मेरा आधिदैविक भाष्य समझ में नहीं आवे, तो अन्य दो प्रकार के भाष्य पर ही विचार करें और मेरे द्वारा उद्धृत किये गये भाष्य से निष्पक्ष तुलना करें, तब निश्चित ही आपका आत्मा मेरे कार्य की महत्ता को अनुभव कर सकेगा। यदि कोई विद्वान् मेरे भाष्य को मिथ्या बतलावे, तो उनसे यह अवश्य पूछ लेना कि क्या उन्हें

अन्य विद्वानों का घृणित भाष्य सत्य प्रतीत होता है ? यदि वे 'हाँ' कहते हैं, तब मुझे उनसे कुछ नहीं कहना है और यदि वे उसे भी मिथ्या बताते हैं, तो उन्हें अपना भाष्य करना होगा, जिससे वेद की गरिमा बच सके। आर्य जगत् के एक सम्मानित सज्जन इस विषय पर विद्वानों से मेरा सार्वजनिक संवाद चाहते थे, परन्तु मैंने इसे स्वीकार नहीं किया, क्योंकि मेरे इस लेख में संवाद की कोई आवश्यकता नहीं हैं। **यह तो धर्म क्षेत्र है, जहाँ एक ओर अश्लीलता, हिंसा एवं मूर्खता आदि से परिपूर्ण भाष्य है, तो दूसरी ओर उच्च कोटि के विज्ञान और उज्ज्वल आदर्शों की शिक्षा देने वाला भाष्य है। दोनों विकल्प आपके समक्ष हैं, निर्णय आपको स्वयं करना है कि आपको वेद का कौनसा स्वरूप सत्य प्रतीत होता है, साथ ही कौनसा स्वरूप ईश्वरीय सिद्ध होता एवं मानवता के लिए आदर्श सिद्ध हो सकता है ?** यदि कोई यह कहे कि वह वेद का अधिकारी विद्वान् नहीं है, इस कारण वह इस विषय में कुछ नहीं कह सकता, इस विषय को विद्वानों पर ही छोड़ देना चाहिए। ऐसे सज्जनों से मैं यही विनम्र निवेदन करूँगा कि कोई सामान्य बुद्धि का व्यक्ति भी गाली एवं शालीनता, अश्लीलता एवं सुन्दरता, वैज्ञानिकता एवं बुद्धिहीनता में अन्तर तो कर ही सकता है। रही बात विद्वानों पर छोड़ने की, तो इसके लिए मैं निवेदन कर ही रहा हूँ कि आप उनसे आग्रह करें कि वे ऐसे प्रसंगों का अर्थ बताएँ। कुछ लोग अपने विद्वानों की कमियाँ छुपाने के लिए अश्लील प्रसंगों को गृहस्थ विषय बताकर पल्ला झाड़ लेते हैं, यह अपराध है। मेरे द्वारा प्रस्तुत प्रसंग में क्या कोई गृहस्थी का विज्ञान बता सकता है ? **गृहस्थ के विज्ञान की भी गम्भीरता व मर्यादा होती है, जिसे किसी शरीर क्रियाविज्ञान अथवा चिकित्सक से जानने का प्रयास करना, फिर देखना कि आपके द्वारा समर्थित भाष्य कहाँ खड़ा है? ध्यान रहे कि अपने विद्वानों**

के सम्मान के लिए वेद तथा ऋषियों की बलि देना घोर पाप है। हमारे किसी के सम्मान का वेद तथा आर्ष ग्रन्थों की तुलना में कोई महत्त्व नहीं है, इसलिए हम इतने हठी व पक्षपाती न बनें।

इस मन्त्र के अतिरिक्त निम्नलिखित विषयों पर भी विद्वानों से उनके विचार जानें, ये विषय आर्यसमाज ही नहीं, अपितु समस्त वेदभक्तों के भविष्य से जुड़े हैं।

अन्य दुःखद उदाहरण

1. ऋग्वेद 10.86.16-17 के दो मन्त्र- **'न सेषे यस्य रम्बते...'** व **'न सेषे यस्य रोमशं...'**

इन मन्त्रों का प्रायः सबने अत्यन्त अश्लील भाष्य किया है, चाहे वह आचार्य सायण हो अथवा आर्य विद्वान्। परोपकारिणी सभा एवं सार्वदेशिक सभा दोनों ने ही इसे प्रकाशित किया है। केवल दो आर्य विद्वानों (पण्डित जयदेव शर्मा चतुर्वेद भाष्यकार एवं पण्डित शिवशंकर शर्मा 'काव्यतीर्थ') का ही भाष्य शिष्ट है, परन्तु कोई विशेष बुद्धिमत्तापूर्ण तथा वेद को विशिष्ट ज्ञान सिद्ध करने वाला नहीं। इन दोनों मन्त्रों पर हमारा भाष्य 'वेदविज्ञान-आलोक' की पूर्वपीठिका में पढ़कर सभी से तुलना करें। 'वेदविज्ञान-भाष्यमण्डनम्आर्यसत्यजिद्भ्रमभंजनम्' नामक पुस्तिका में भी यह भाष्य प्रकाशित किया था।

2. व्याकरण महाभाष्य 1.1.1 में शब्दानुशासनोपदेश प्रकरण में- **'पञ्च पञ्चनखा भक्ष्याः, अतोऽन्ये अभक्ष्याः। अभक्ष्यो ग्राम्यकुक्कुटः, अभक्ष्यो ग्राम्यशूकरः। आरण्यो भक्ष्यः। इति।'**

इस प्रकरण से पाँच नाखून वाले पाँच प्राणियों को मार कर खाने की

अनुमति सभी टीकाकारों ने दी है। किसी भी वैयाकरण को इस प्रकरण का दूसरा अर्थ नहीं सूझा। सभी गुरुकुलों (आर्यसमाजी एवं पौराणिक) में यही पढ़ाया जाता है, तब किसे दोष देंगे? इस प्रकरण का यथार्थ विज्ञान भी 'वेदविज्ञान-आलोक' की पूर्वपीठिका में देखा जा सकता है। इस प्रकरण के प्रचलित अर्थ के रहते कौन वैदिक विद्वान् मांसाहार का विरोध कर सकता है?

3. ऐतरेय ब्राह्मण का 33वाँ अध्याय- **शुनःशेप हरिश्चन्द्र उपाख्यान**।

4. 'स्त्रीणां दानविक्रयाऽतिसर्गा विद्यन्ते न पुंसः। पुंसोऽपीत्येके। शौनःशेपे दर्शनात्।' (निरुक्त 3.4) [महिलाओं के दान, विक्रय व त्याग का विधान]

इस प्रकरण में नरबलि का विधान है एवं उस बलि के लिए एक ऋषि अपने पुत्र शुनःशेप को एक सौ गौओं के बदले बेच देता है। कुल तीन सौ गौओं के बदले स्वयं तलवार लेकर उसे मारने खड़ा हो जाता है। कोई विद्वान् बताये कि क्या वह इस सम्पूर्ण प्रकरण का अन्य प्रकार से अर्थ कर सकता है? निरुक्त 3.4 में इसी आख्यान के आधार पर पुरुष के विक्रय का भी विधान किया है, साथ ही महिलाओं के त्याग, विक्रय व दान का विधान किया है। अब किसे मुख दिखलाएँ? कोई-कोई व्यर्थ उत्साही व अधकचरे विद्वान् ऋ.5.2.7. के ऋषि दयानन्द-भाष्य के आधार पर 'शुनःशेप' का अर्थ 'विद्वान् पुरुष' बताने लगते हैं, तब क्या वे निरुक्त के इस प्रकरण से विद्वान् पुरुष को बेचने का विधान कर रहे हैं? इसके साथ ही ऐसा अर्थ करके क्या वे ऐतरेय ब्राह्मण के 33 वें अध्याय की व्याख्या कर सकते हैं? ऋषियुग व्यतीत होने के पश्चात् आज तक सम्भवतः कोई ऐसा विद्वान् धरती पर नहीं जन्मा। क्या नरबलि पर भी हमारे विद्वान् बैठे

रहेंगे? इसी अध्याय के आधार पर मैंने सूर्य के केन्द्रीय भाग में होने वाली नाभिकीय संलयन प्रक्रिया के ऐसे गम्भीर विज्ञान का उद्घाटन किया है, जिसे वर्तमान वैज्ञानिक सोच भी नहीं सकते। मैंने इस प्रकरण के सभी नामवाची पदों का वैज्ञानिक व्याख्यान किया है।

5. पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्त्स्थूलगुदया सर्पान् गुदाभिर्विह्रुत आन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनꣳ शेपेन प्रजाꣳ रेतसा चाषान् पित्तेन प्रदरान् कूश्माञ्छकपिण्डैः॥ (यजु.25.7), इसका ऋषि दयानन्द का भाष्य स्पष्ट व्याख्या चाहता है।

इस मन्त्र का ऋषि दयानन्द का संस्कृत भाष्य स्पष्ट करके कोई दिखाए अथवा अपना भाष्य करके दिखाए। इसका हिन्दी अनुवाद नितान्त फूहड़पन का प्रतीक बन गया है। इसे लेकर भी अनेक विधर्मी कठोर आलोचना कर रहे हैं। जो विद्वान् केवल दानदाताओं को दिखाने के लिए ऋषि दयानन्द के नाम की माला जपते हैं, मंच पर चिल्ला-चिल्ला कर श्रद्धा का अभिनय करते हुए भाषण में बार-बार ऋषि का नाम लेते हैं, वे इस मन्त्र तथा यजुर्वेद के सम्पूर्ण अध्याय 24 एवं 25 वें अध्याय के प्रथम सात मन्त्रों के भाष्य को समझा कर के सबको दिखायें, उसके पश्चात् मेरी ऋषिभक्ति पर प्रश्न उठायें। एक विद्वान् के आग्रह पर मैंने उदाहरणार्थ न केवल इस एक मन्त्र (25.7) के ऋषि-भाष्य की हिन्दी व्याख्या की है, अपितु इसका अन्य दो प्रकार का भाष्य (आधिदैविक व आध्यात्मिक) भी करके दिखाया है, उसे हमारे वेब साइट vaidicphysics.org पर देखा जा सकता है।

निर्णय लेने का समय

ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनसे हमारी वैदिक संस्कृति व सभ्यता का चीरहरण हो रहा है। इन सन्दर्भों में अश्लीलता, लम्पटता, मांसाहार, नरबलि, पशुबलि का समर्थन है। क्या इनके उत्तर हमारे आर्य विद्वानों को नहीं देने चाहिए? यदि किसी आर्यजन को मेरे इन प्रमाणों पर विश्वास नहीं हो, तो वे स्वयं उन ग्रन्थों को मंगवाकर पढ़ें अथवा अपने परिचित उन विद्वानों, जो निरुक्त पढ़ते वा पढ़ाते हैं, से पूछ लेवें। उनसे यह भी पूछें कि उनको यह सब पढ़ाते हुए कैसा अनुभव होता है? यदि कोई विधर्मी इस पर व्यंग्य करे, तो वे उसका क्या उत्तर दे सकते हैं? इसके साथ यह भी पूछें कि इसको पढ़ने से कौनसी विद्या का प्रकाश हो रहा है? और उससे किसका भला होने वाला है? फिर यह भी जानने का प्रयास करें कि क्या वेद का यही स्वरूप है? क्या ऐसा वेद ईश्वरीय है अथवा क्या यह भाष्य उचित है, तो फिर ऋषि दयानन्द ने महीधर के भाष्य की आलोचना क्यों की?

ध्यातव्य है कि कोई यह समझने की भूल न करे कि इन भाष्यों को कौन पढ़ेगा? हिन्दुओं को छोड़कर सभी हमारे ग्रन्थों को पढ़ रहे हैं और कभी न कभी वे इन प्रसंगों को पढ़ेंगे ही। इस कारण इस कलंक को अभी से धो डालना चाहिए, अन्यथा आपके ही बच्चे विधर्मियों द्वारा इस विषय को उठाने पर ईसाई, मुसलमान, यहूदी वा वामपंथी बन जायेंगे, इसलिए जागो! भविष्य गहन अन्धकार में दिखाई दे रहा है।

मेरी घोषणा

मैंने तो श्रावणी पर्व (30 अगस्त 2023) को यह सार्वजनिक घोषणा कर ही दी है कि संसार का कोई भी बुद्धिजीवी वेद एवं आर्ष ग्रन्थों पर प्रामाणिक ढंग से आक्षेप करे, मैं उन सबका उत्तर दूँगा। उन लोगों को आक्षेप लगाने के लिए चार महीने का समय भी दिया है। क्या ऐसी घोषणा प्रत्येक वैदिक विद्वान् को नहीं करनी चाहिए? वेद की रक्षा करना हम सब का दायित्व है, तब क्यों नहीं विधर्मियों के साथ बौद्धिक युद्ध के लिए सभी विद्वानों को उद्यत रहना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर भी मैं सभी वेदभक्तों पर छोड़ता हूँ और यह भी स्मरण कराना चाहता हूँ कि वेद और ऋषियों के ग्रन्थों की रक्षा के बिना हमारा, हमारे देश का अथवा विश्व का कोई सुखद भविष्य नहीं हो सकता, इसलिए इस जर्जर होती नींव को अभी से संभालना प्रारम्भ कर दें, अन्यथा यह भवन कब धराशायी हो जाये, कोई कुछ भी नहीं कह सकता।

आह्वान

हमने ऐतरेय ब्राह्मण का वैज्ञानिक व्याख्यान अपने विशाल ग्रन्थ 'वेदविज्ञान-आलोक' में कर दिया है। यह बृहद् ग्रन्थ 2800 पृष्ठीय होने पर भी 18 देशों में पहुँच चुका है। देश व विदेश के वैज्ञानिक इससे प्रभावित हो रहे हैं। युवा वैज्ञानिक ही नहीं, अपितु शीर्ष वैज्ञानिक भी जुड़ रहे हैं। यह ग्रन्थ संसार के वर्तमान विज्ञान को एक सदी तक मार्गदर्शन देते रहने में सक्षम है। इसी प्रकार के ग्रन्थ अन्य विद्वान् क्यों नहीं लिखते? क्या यह केवल मेरा ही दायित्व है? मैं तो अपना ही दायित्व मानकर आर्यजगत् का इस विषय में नेतृत्व करने को तत्पर हूँ, परन्तु आर्यसमाज को मेरे कार्य का

महत्त्व कहाँ दिखाई देता है? संगठन की दृष्टि में वेद का महत्त्व रहा ही कहाँ है?

शीघ्र ही मेरा एक और ग्रन्थ 'वेदार्थ-विज्ञानम्' (महर्षि यास्ककृत निरुक्त की वैज्ञानिक व्याख्या) प्रकाशित होने वाला है। यदि इसके लिए मुझे सभी देशवासियों व सरकार का साथ मिले, तो मेरे ये दोनों ग्रन्थ न केवल आर्यसमाज वा भारतवर्ष, अपितु विश्व का भविष्य बदल सकते हैं।

यदि मैं ऐतरेय ब्राह्मण एवं निरुक्त का भाषण नहीं कर पाता, तो अभद्र भाषा को देखकर मैं स्वयं वेद का घोर विरोधी हो जाता, परन्तु परमेश्वर ने ऐसी प्रज्ञा प्रदान की कि मैं यह गुरुतर कार्य कर सका।

इसलिए संसार के वेदभक्तो! मध्यकाल एवं वर्तमान काल में वेदों के साथ-साथ ऋषियों, देवों व देश की दुर्दशा के मूल उत्तरदायी ये मिथ्या भाष्य ही हैं। इसलिए आइये, इनको शुद्ध करने तथा इनका विज्ञान प्रकाशित करने में मेरा साथ दीजिये, अन्यथा फिर ऐसा अवसर आपको नहीं मिलेगा।

आयें, आत्मा से समवेत स्वर में बोलें-

जय माँ वेद भारती

✍ आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

भाद्रपद शु. ६/२०८०, दिनांक 21.09.2023